''ओशो रजनीष विवादास्पद छवि और उनके दार्षनिक मान्यताओं पर विमर्ष''

समकालीन भारतीय दर्शन के चिंतन की दिशा पर विचार करें तो अधिकांश कार्य परम्परागत दार्शनिक मान्यताओं के पोषण का हुआ है। इसके अलावा कुछ प्रयासों को छोडकर दार्शनिक चिंतन या तो समकालीन पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित या भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन पर तुलनात्मक कार्य किया गया है। लगभग 46 वर्ष पूर्व प्रकाशित दार्शनिक त्रैमासिक में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय उपर्युक्त लिखित विचार को कार्ल पॉटर के कथन से उद्धृत करते हैं कि "इस समय भारत में दर्शन केवल शास्त्रीय पांडित्य, भारतीय अथवा पाश्चात्य दार्शनिक मतों के निरूपण, वर्गीकरण और तुलनात्मक अध्ययन के स्तर पर उतरा हुआ है।" आज भी यह प्रश्न प्रासंगिक है कि क्या कारण है हम अपनी प्राचीन मान्यताओं, परम्पराओं से भिन्न कोई नवीन चिंतन नहीं करना चाहते हैं? वर्तमान में व्यावहारिक दर्शन पर ध्यान केन्द्रित हो रहा है लेकिन हर तरह का भारतीय चिंतन अंततः अपना निष्कर्ष प्राचीन भारतीय मान्यताओं से प्रमाणित करवाने को आतुर है। दार्शनिक त्रैमासिक के उसी लेख में लेखक ने प्रो. जे. एन. मोहन्ती को उद्धृत किया है। उनका कथन है कि "भारतीय दार्शनिक चाहे वह जिस भी दार्शनिक समस्या या आन्दोलन या प्रविधि से संबंधित क्यों न हो, इसके प्रति सचेत हुए बिना नहीं रह सकता कि वह अपनी परम्परा से किस तरह जुडे।" इस दिशा में यदि परम्परा से कुछ भिन्न, नवीन चिन्तन प्रस्तुत भी किया जाता है तो उसे उतना महत्त्व प्राप्त नहीं हो पाता है। इसका एक उदाहरण ओशो (रजनीश) का दर्शन है। हालाँकि ओशो की विवेचना भी परम्परागत निष्कर्ष पर पहुँचती है लेकिन पद्धति में कुछ अंतर है।

1947 की आजादी उपरांत70–80 के दषको में, जोष से भरे हुएयुद्ध विजेता युवा भारत की धरती पर एक धूमकेतु विचारक ओषो रजनीष का उदय होता है। उसके आसपास अलग अलग देषो से आये युवाओं को गेरूआ गाउन पहने, गले में काले बड़े मनको की माला के पैडंल पर लटकते मुस्कुराते ओषो की तस्वीर को देखकर, लोगो को आष्चर्य होता है। ओषो रजनीष में अदम्य आकर्षण है और ओषो रजनीष से असीम घृणा भी की जाती है। वे धारा प्रवाह बोलते थे सरल ज्ञानमयी भाषा की लयबद्धता में, शब्द नृत्य करते आते तथा विचारों को प्रकट करते समय, उनकी भाव–भंगिमा सम्मोहक होती थी। लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। लेकिन इसके विपरीत उन्हे भारतीय परम्पराओं का विरोधी, मंहगी वस्तुओं का भोग करने वाला सेक्सगुरू, धर्म की गलत व्याख्या करने वाला भी माना जाता है। भारतीय दार्षनिक विचारकों और भारतीय षिक्षा पाठ्यक्रमों में उन्हे कोई स्थान नही दिया गया है। उनके समकालीन, साहित्यकार श्री कांति कुमार जैन ने अपने एक संस्मरण में, उनके संबंध में लिखा है – ''रजनीष जानते थे कि आम भारतीय का जीवन धर्म और सेक्स की धुरी पर घूमता है। धर्म और सेक्स ही उसे तनाव मुक्त करते हैं। रजनीष ने धर्म और सेक्स को एक कर दिया। सम्भोग सेक्स का चरमक्षण होता है समाधि धर्म का। आम भारतीय को बचपन से धर्म को उदात्त समझने और सेक्स को गर्हित समझने की षिक्षा दी जाती है। वह दोनो से आबसैस्ड रहता है। वह न धर्म से दूर भाग सकता है और न सेक्स से दूर भाग सकता है। रजनीष ने सेक्स का उदात्तीकरण करना चाहा और धर्म का रौब मानने से इंकार कर दिया। सेक्स और धर्म के पहियों को गतिषील रखने के लिए रजनीष ने अर्थ की धुरी बनाई।[1]

ओषो रजनीष पर की गई यह उनकी विवेचनात्मक टिप्पणी, कितनी सत्य है यह विचारणीय है लेकिन यह भी विस्मय का**विषय** है कि हम देखते है भारत में टाट–बोरा आदि पहनने वाले, गालियां देने वाले, साफ–सुथरे न रहने वाले, अजीबोगरीब क्रियाएँ करने वाले, को भी जनमानस पीर, औलिया,

ओझा, तांत्रिक मांत्रिक, आध्यात्मिक **शक्तिओं** के धारक, चमत्कारिक साधु संत मानकर पूजती है तो ओषो रजनीष में ऐसा क्या है जो वह गले के नीचे उतर नही पाते है?

जब इसे जानने का प्रयास किया जाता है तो ओषो रजनीष को अस्वीकार करने के दो प्रमुख कारण दृष्टिगोचर होते है –

1. उनके द्वारा स्वतः बनाकर **सम्प्रेषित या प्रस्तुत**की गई, स्वयं की विवादित छवि।
2. उनके दार्षनिक, धार्मिक विचार एवं उनकी व्याख्या।

जब ओषो रजनीष अपने अध्यापन संबंधित समस्त सर्टिफिकेट को आग लगाकर, दर्षनषास्त्र के प्राध्यापक पद का त्याग पत्र देकर जबलपुर से बम्बई आए तो वहां उनके प्रवचनों से आकर्षित होकर उनके जो नये नये अनुयायी बने, उनको वे बम्बई के भीड़ वाली जगह चौपाटी बीच पर सुबह 6 बजे डायनेमिक मेडीटेषन कराते थे। यह डायनेमिक मेडीटेषन उनके द्वारा तैयार की गयी 10 मिनट की एक ध्यान प्रक्रिया थी जिसके 5 चरण होते थे। पहला चरण– तेज सांस भरना और छोड़ना, दूसरा चरण– जो मन में आए करना, चिल्लाना, रोना, हँसना, कूदना आदि, तीसरा चरण– हाथ उपर उठाकर हू हू हू करते हुए कूदना और चौथा चरण – बिल्कुल स्थिर हो जाना होता था और पांचवे चरण– में सबके साथ मिलकर नृत्य करना होता था। इस मेडीटेषन के संदर्भमें उनकी उस समय की प्रबल समर्थक, सहयोगी, अनुयायी माँ आनंदषीला ने लिखा है – ''यह प्रतिभागियेा को थोड़े समय के लिए जागरूकता और पागल होने का मौका देता था।''[2] भीड़भाड़ वाले स्थान पर, पागलो जैसी हरकत करने वाले चरणो से सबका ध्यान आकर्षित तो होता ही है। ये ही प्रारंभ ओषो रजनीष के प्रचलित और विवादित होने की व्यवस्थित योजना को प्रकट कर देता है। कान्ति कुमार जैन लिखते हैं कि ''रजनीष प्रारंभ से ही धाकड़ थे। छपनोत्सुक?, प्रदर्षनप्रिय, अहम्मन्य। फोकस रहने की कला में दक्ष। वे प्रचार प्रसार युग के सफल भगवान यो ही नही बन गए।''[3] बम्बई से ही ओषो रजनीष ने अपने फोकस रहने वाली विवादास्पद छवि की योजना पर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले उन्होने अपने प्रवचनों से अपनी विद्रोही छवि बनाई और फिर अपने सन्यासियों को अचंभित करने वाले ध्यान प्रयोग करवाने लगे। अपने प्रवचनों में जहां उन्होने समाजिक मूल्यों, संस्कारो, विवाह, परिवार, वर्ण व्यवस्था का खुलकर विरोध किया, वहीं व्यक्तिगत संबंधो, भोग विषयसुख सेक्स को नैसर्गिक और जैविक मानकर अपने बेबाक विचारो को अभिव्यक्त किया। उन्होने अपना एक ऐसा सुविधाजनक दर्षनगढ़ा जिसे आधार बनाकर वे किसी भी विचारधारा की खुलकर आलोचना कर सकते थे और प्रषंसा या समर्थन भी कर सकते थे, वे बतलाते थे कि ''मेरा कोई दर्षनषास्त्र नही है।''[4] और जहां तक बात कहने का संबंध है। एक ही **शाम**मैं सौ बार अपना खण्डन कर सकता हूँ।[5] धीरे–धीरे वह बहुत लोकप्रिय होने लगे उनके अनुयायी बनने के लिए किसी भी जाति, धर्म, रूप, रंग, नागरिकता, सीमा का भेद नही था। यहां तक की,उनके आश्रम में ध्यान पद्धतियों वहां की जाने वाली सभी प्रकार की साधनाओं, की अनिवार्यता का भी कोई बंधन नही था। उन्होने अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगो पर आधारित ग्रुप थैरेपी और योग आधारित ध्यान पद्धतियों को अपने आश्रम प्रारम्भ किया। किसी भी गुरू द्वारा अपने आश्रम में दी जाने वाली इतनी खुली छुट और स्वतंत्रता ही बहुत बड़ा आकर्षण और आमंत्रण था। उन्होने इसका प्रचार किया और अपने आश्रम प्रविष्ठि और सारी पद्धतियों की कीमत लगाई और इन्हे बेचकर अमीर बनते चले गये। प्रारम्भ से ही इनके साथ रहने वाली माँ आनंदषीला ने अपनी संस्मरणात्मक किताब ''उसे मत मारो'' में लिखा है – ''मैं गवाह हूँ कि वह कैसे बाम्बे और पुना में अपने कार्यो में शीर्ष पर थे, कैसे वह लोगो के साथ काम करते थे।कैसे वह विवादो को खड़ा करने के लिए मीडिया का चालाकी से इस्तेमाल करते थे और उनका विषाल दृष्टिकोंण क्या था।''[6] और फिर ओषो रजनीष का यह दृष्टिकोण धीरे–धीरे **स्पष्ट** होता चला गया।

यदि हम भारतीय सामाजिक प्रवृत्तियों और मूल्यों का निष्पक्ष अवलोकन करे तो यह निर्विवादित है कि निजता से अधिक सामूहिकता को महत्व देने वाली यहां की नैतिक सभ्यता, कुछ मान्यताओं और परम्पराओं को स्थायी और कभी भी परिवर्तित न करने में, यकीन रखती है जैसे धार्मिक क्रियाऐं, सामाजिक जिम्मेदारियां, पारिवारिक कर्तव्य आज भी पवित्र मूल्य माने जाते है। इसी प्रकार गुरू, संत, सन्यासी, ऋषि, भगत उसे माना जाता है। जो सर्वस्य त्यागी हो और संयमपूर्ण तपष्चर्या आधारित नियंत्रित जीवन जीता हो। लेकिन ओषो रजनीष जिस रूप में प्रकट हुए उनमें उनकी हीरो जड़ित आकर्षक टोपियाँ, महंगी रोल्स रायस कारें, अपने प्राइवेट जेट विमान और भोग युक्त जीवन था। फिर उन्होने त्याग और संयम को न केवल दमन कहा वरन् विवाह, परिवार को भी अनावष्यक बतलाया। उनके कम्यून की स्वच्छंद जीवन शैली, पाष्चात्य अनुयायी और खूबसूरत चेहरो ने आकर्षण तो पैदा किया लेकिन प्रोपेगंडा करने वाले, लकदक एष्वर्य और महंगे पहिरावे वाले भोग – विलासिता समर्थक अमीर गुरू के प्रति लोगो में संशय और अश्रद्धा थी। दूसरा खुलेआम भोग सेक्स, नग्न रहने जैसा साहस भारतीय समाज के लिए अनैतिकता पूर्ण कृत्य थे। यह तो कोई नही जान सकताकि ओषो रजनीष अपारंपरिक कर्मो के पीछे उनकी क्या शुभ मंषा थी?**किन्तु** वे भी जान चुके थे उनके कम्यून का यह प्रायोगिक मॉडल भारत में नही चल सकता है अतः उन्हे भारत छोड़कर अमेरिका जाना पड़ा क्योंकि वही पर अपने जीवन से उबे हुए मिलिनियर बिलिनियर पाष्चात्य षिष्य मिल सकते थे हाँलाकि तब तक अनेक देषो के अमीर अनुयायी उनसे जुड़ चुके थे जब उन्होने अपने को भगवान घोषित कर दिया था। ''1972 के आसपास पष्चिमी देषो के यात्री, बड़ी संख्या में इस भगवान नाम की घटना से आकर्षित हुए। वह हमेषा से अंतर्राष्ट्रीय दर्षक चाहते थे।''[7] वे अमेरिका चले गये। वहां पर उनके लिए ओरेगान में आश्रम रजनीषपुरम को निर्मित किया गया। किन्तु उनकी विद्रोही छवि और विवादास्पद विचारो ने तथा उनके षिष्यों की महत्वकांक्षाओं ने उनके सपने को चूर–चूर कर दिया। लेकिन अपनी गढ़ी हुई एक खास छवि, उनके पतन का कारण बनी। 21 देषो में, उनके नागरिकता आवेदन को ठुकरा दिया। ऐसा लगता है कि उन्होने पहले भी तय कर लिया था कि जगत में उन्हे एक रहस्यदर्षी सदगुरू की भूमिका निभानी है।वे भारत में स्थित अपने आश्रम पुणे लौट आये यही उनकी मृत्यु हो गई।

ओषो रजनीष द्वारा प्रवर्तित दर्षन को निम्नलिखित विषेषताओं द्वारा समझाया जा सकता है –

1. ओषो ने अपने दर्षन में भौतिकता और आध्यात्मिकता के भेद को स्वीकार नही किया है।
2. सहज रूपान्तरण को प्रमुख माना है तथा साधन के रूप में कठोरता पूर्वक त्याग को वे दमन कहते है।
3. ओषो के दार्षनिक पद्धति का नाम 'जोरबा द बुद्धा'' है।
4. ओषो दर्षन का लक्ष्य नव सन्यास धारित ''न्यूमैन'' है ध्यान और योग उसके सहायक है।

जब ओषो के व्याख्यान, विचार और ध्यान पद्धतियों की विचार सामग्री का **आधार** जानने का प्रयास किया जाता है तो ज्ञात होता है वह नवीन नही है वह तंत्र दर्षन की एक शाखा सहजयान, वज्रयान की वैचारिक और दार्षनिक नींव पर अवलम्बित है तथा उनके ध्यान की अनेक विधियां विज्ञान भैरव तंत्र से ली गई है। तंत्र की विचारसरणी में वे आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं, विज्ञान की नवीनतम खोजो, प्रख्यात दार्षनिको, समाज सुधारको, विष्व के प्रमुख ज्ञात और अज्ञात रहस्यदर्षियों भारतीय दर्षन के प्रमुख ग्रंथो गीता, योग, भक्ति दर्षन का आश्रय लेकर, अपने दार्षनिक मिक्सचर को तैयार कर उसे तार्किक रूप प्रदान करते हैं। अपने दर्षन को प्रस्तुत करते हुए वे कहते है भौतिकवाद और भोग, गर्हित या अस्वीकरणीय नही है वरन आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी है। उनके अनुसार ''मैं एक ऐसे समन्वय की बात कर रहा हूं जिसकी कल्पना भी उन्होने नही की। मैं भौतिकता और धर्म के बीच समन्वय का सेतु बना रहा हूँ। मैं चाहता हूं देष धनी भी हो ध्यानी भी। मैं चाहता हूं देष समृद्ध भी हो **शांत** भी।''[8]उनके दार्षनिक विचारों में भोग से प्रारम्भ है समाधि पर

परिसमाप्ति है। भौतिकता से चलते हुए आध्यात्मिक अनुभूति तक पहुंचना है। इसलिए वे इसे अलग अलग न मानकर, इनका स्तरभेद कर समन्वयकी बात करते है।

भारतीय सांस्कृतिक और दार्षनिक परम्परा साध्य की पवित्रता के साथ साधन के शुभत्व को भी अनिवार्य स्वीकार करती है तथा इस मान्यता में शुभ साध्य हेतु जीवन का संयम इंद्रिय–निग्रह, तप, नियंत्रण, नैतिक मूल्यों का अवलम्बन अनिवार्य मानती है। साधन संबंधी मात्र इस अवधारणा से ओषो की वैचारिक भिन्नता है। वे तांत्रिक साधना के समान इच्छाओं और इन्द्रियों पर कठोरतापूर्वक किए गये नियंत्रण को दमन कहते है। ''दमन का अर्थ जो हमारे अंतस में सहज उठता है उसे उठने न दे और जो नही उठता है उसे बलपूर्वक उठावे और प्रकट करे।''[9] ओषो के अनुसार जो कुछ जैविक और नैसर्गिक है, उसे कैसे रोका जा सकता है। व्यक्ति के विषय सुख भोग संबंधी इच्छाओं को न तो समाज के भय से, न षिक्षा न संस्कृति से, न बुद्धि, विवेक, मन से नियंत्रित किया जा सकता है। वे कहते है – ''वह सब तुम्हारी खोपड़ी से बिल्कुल पोछ दिया जाए, जो तुम्हारे समाज से, माँ बाप से, षिक्षा और संस्कृति से मिला है तो भी कामवासना पैदा होगी क्योंकि यह वासना तुम्हे समाज से नही मिलती है ये वासना जैविक रूप से तुममें बिल्टइन है।''[10] यह उर्जा है और जब इसका दमन होता है तो इसका दुष्परिणाम समस्त जीवन चक्र को खण्डित कर देता है तथा यह अनेक नकारात्मक रूपों में फूट पड़ती है। इसलिए ओषो की केन्द्रीय मान्यता है कि भोगरूपी इन इच्छाओं, एन्द्रिक सुख का दमन न होकर रूपान्तरण होना चाहिए। ''जरूरत है इसके समग्रता से**समझने की।अगर तुमने समग्रता से** समझ लिया तो रूपान्तरण इसका परिणाम है।''[11] यही रूपान्तरण आरोहित होकर साध्य प्राप्ति करता है।

उपर्युक्त दोनो विषेषताएँ ओषो दर्षन का माडल तैयार कर देती है जिसे वे ''जोरबा द बुद्धा'' कहते है। यह जोरबा से बुद्ध तक साधक की आध्यात्मिक यात्रा है। जिसका प्रारम्भ जोरबा से होता है। जोरबा एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी भी अपराध बोध में या द्वन्द में न पड़कर जीवन में केवल सुखभोग का मजा लेना चाहता है। ओषो ने इसे एक ग्रीक लेखक कजान जाकिस की पुस्तक 'जोरबा द ग्रीक' से लिया है। जोरबा का परम साध्य भोग है वह आदिम प्राकृतिक नैसर्गिक आवष्यकताओं को ही जीवन समझाता है। ओषो के अनुसार इसी चरमभोग से जबवह गुजरता है तो अंततः उसे भोग की निःसारता का बोध होता है,तब वह ध्यान की ओर होता है**आकर्षित** तथा उसके बुद्धत्व की यात्रा प्रारम्भ होती है। दूसरे शब्दों में भोग की परिसमाप्ति ध्यान है और ध्यान बुद्धत्व के प्राकट्य की प्रक्रिया है। ''बुद्ध किसी परिकल्पना में अवतरित नही हो रहे, वह कोई विषेष नही है। वह भी समान्य मानव है, मेरी और तुम्हारी तरह, लेकिन उनमें सम्भावना उर्ध्वगमन करने लगी है।''[12] ओषो मानते है कि स्वयं बुद्ध भी बुद्धत्व को इसलिए उपलब्ध हुए क्योंकि उन्होने भोग रूपी जोरबा का पूरा जीवन जिया था। जोरबा से चलकर बुद्धत्व तक पहुंचना ओषो के दर्षन में साधक की संपूर्ण अभिव्यक्ति है।

ओषो कहते हैं कि मेरा नव सन्यास के मार्ग पर साधना करता हुआ सन्यासी जिसे वे न्यूमैन कहते है वह जगत में रहते हुए आनंदपूर्ण जीवन जीता है वह न तो किसी भी भोग आदि का निषेध करता है न संसारादि का कुछ त्याग करता है वे कहते है ''मैं सन्यासी को संसार से जोड़ना चाहता हूँ। मैं ऐसे सन्यासी देखना चाहता हूँ जो दुकान पर बैठे हो, **दफ्तर** में काम भी कर रहे हो,खेत पर मेहनत भी कर रहे हो जो जिंदगी की पूरी सघनता में खड़े हो, हार नही गए हो, भगोड़े न हो ऐस्कपिस्ट न हो, पलायन न किया हो।''[13] जो हर समय आनंदित रहते हो। आनंद उनका स्वभाव हो। ओषो कहते है ''मैं तुम्हे अखण्ड दृष्टि देना चाहता हूं जिसमें कुछ भी निषेध नही है। मैं तुम्हे विधायक धर्म देना चाहता हूं।''[14] और इस अवस्था को उपलब्ध होने में ध्यान और योग सहायक है। ओषो ने अनेको ध्यान पद्धतियों को अपने आश्रम में प्रारम्भ किया वे अपने साधको से कहते है कि अपने स्वभाव

को समझकर अपनी साधना पद्धति का चयन कर लेना चाहिए।''अपनी नियति अपने व्यक्तित्व अपने सायकोलाजिकल टाईप को ठीक से समझकर अपने अनुकूल साधना पद्धति को चुन लेना चाहिए।''[15] वे अपने दर्षन में जितना महत्व भोग को देते हैं उतना महत्व ध्यान को भी देते हैं। ध्यान को वे मानव की अदभूत खोज कहते हैं ''ध्यान उस डायमैंषन उस आयाम की खोज है जहां हम बिना प्रयोजन के सिर्फ होने मात्र में जस्ट बिइंग में आनंदित होते हैं।''[16] यही ओषो रजनीष के दर्षन का सार है। यह तो स्पष्ट है कि उनकी दार्षनिक मान्यताएं सरल और सरस है किन्तु उन्हे मौलिक नही माना जा सकता है क्योंकि हमें वे विचार तंत्र, सहजयान, वज्रयान, सांख्यदर्षन, गीता आदि में दिखलाई पड़ते हैं पर उनकी प्रस्तुति विषिष्ट और बेहद ही आकर्षक है।

इसके अलावा इनकी विचारधारा की सबसे बड़ी कमी सामाजिक प्रतिबद्धता और नैतिक उत्तरदायित्व का अभाव है। उनके दर्शन में मानवीय करुणा का खाली स्थान है। उनका अनुयायी केवल अपने आनंद के लिए जीता है। ओशो ज़रूर अपने दर्शन में व्यक्तिगत और आध्यात्मिक जिज्ञासाओं पर ध्यान केंद्रित करते है पर वह उससे आगे नहीं बढ़ पाते है। इसलिए उनकी स्थापना आकर्षक होते हुए भी एकांगी और व्यक्तिवादी कही जा सकती है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ –

★दार्षनिक त्रैमासिक – 1975 पृष्ठ – 140

(गोष्ठी –समकालीन भारतीय दार्षनिक परिस्थिति –डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय)

(1) जैन, कान्तिकुमार ,षेक्सपियर वाया प्रो. स्वामीनाथन रजनीष भगवान बनने से पहले पृष्ठ 242 अनुज्ञा बुक्स दिल्ली 2017

★जिस दिन मैने विष्वविद्यालय की नौकरी छोड़ी उसी दिन मैने सबसे पहले काम मैने यह किया कि सहेजकर और संजोकर अपने सारे सर्टिफिकेटों और डिप्लोमाओं को आग लगा दी।

ओषो – स्वर्णिम बचपन पृष्ठ 323 हिन्द पाकेट बुक 2017

(2) माँ आंनदषीला उसे मत मारो भगवान रजनीष के साथ मेरे जिन्दगी की कहानी पृष्ठ 101फिंगरप्रिन्ट द्वारा प्रकाषित प्रकाष बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की छाप नई दिल्ली 2015

(3) जैन कान्तिकुमार रजनीष का दर्षन – आध्यात्मिक दाद खुजाने का मजा पृष्ठ 91, विष्वविधालय प्रकाषन वाराणषी 2017

(4) ओषो टाईम्स नवम्बर 1995 पृष्ठ –55

कोरेगाँव पार्क पुणेसे प्रकाषित

(5) ओषो टाईम्स जनवरी 2007 पृष्ठ – 28

(6) माँ आनन्दषीला, उसे मत मारो पृष्ठ – 12

(7) वही पृष्ठ –101

(8) ओषो टाईम्स फरवरी 1997 पृष्ठ –7

(9) ओषो साधना पथ पृष्ठ 32 द रिबेल पब्लिकेषन हाउस पुणे 1996

(10) ओषो तंत्र सूत्र भाग 2 पृष्ठ 16 द रिबेल पब्लिकेषन हाउस पुणे

(11) वही पृष्ठ 35

(12) आषो टाईम्स अप्रेल 2006 पृष्ठ 44

(13) ओषो टाईम्स जनवरी 1997 पृष्ठ 18

(14) ओषो टाईम्स अगस्त 1997 पृष्ठ22

(15) ओषो टाईम्स सितम्बर 1999 पृष्ठ 33

(16) ओषो ध्यान योग पृष्ठ –176

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लिमि. नई दिल्ली 2008

डॉ. हरनाम सिह अलरेजा

विभागाध्यक्ष (दर्षन एवं योग)

शास. दिग्विजय महाविद्यालय, राजनांदगाँव